THE TIMES OF INDIA

Date:06-12-22

Apart From Apathy

Urban voting is low in part because politicians don't have too many deliverables for middle classes

TOI Editorials

The EC didn't mince words. "Urban (voter) apathy continues unabated from Shimla to Surat," it said on Saturday. In Shimla, the turnout was more than 10 percentage points lower than Himachal's state average of 75. 6%. The trend held in the first phase of Gujarat polls where the urban turnout was lower than the surrounding rural areas. The urban turnout in the first phase in Gujarat was also lower than the same in 2017. In Delhi's local polls, better-off classes largely stayed away.

The trend is not new. In the first three decades of elections, the relative participation of urban voters was greater. The gap between urban and rural turnout has widened since the 1980s. "Urban apathy" isn't irrelevant – urban India contributes to 60% of GDP and a very high proportion of taxes. As this paper has argued, improvement in urban governance has been hindered by the political executive holding back on the transfer of power to urban bodies envisaged three decades ago in the Constitution's 74th amendment.

There are certain unique factors about India's urban governance that are relevant to voter turnout. Political scientists have used surveys and election data to study the plausible reasons for the lower turnout in urban areas. The common thread running through some of the studies is that rural turnout is positively influenced by a more pronounced emphasis on group mobilisation and a greater need for the intervention of politicians to compensate for state failure. The second aspect is relevant even within urban centres. For example, in Delhi's 2020 assembly election the turnout in New Delhi, the seat of the government, was 52. 15%, almost 20 percentage points lower than some constituencies with large slum clusters. Poorer urban Indians still need politicians to improve some services. Better-off classes, who can insulate themselves somewhat from civic non-governance, don't have a lot of incentive.

That the urban-rural vote divide is not decreasing even in national polls – where supposedly 'big' issues familiar to middle classes are debated – tells us that it's not apathy or not just apathy that keeps better off city Indians from voting. There's nothing wrong in electoral politics focussing on the rural areas, and more so on lower-income rural poor. But the disconnect between city middleclassesand elections is still something politicians should think about.

THE HINDU

Date:06-12-22

Faith and freedom

Freedom of religion is protected when state keeps away from matters of faith

Editorial

Protracted litigation in the name of combating forcible religious conversion is taking up valuable time of courts. The Supreme Court is hearing a purported Public Interest Litigation (PIL) seeking action to curb deceitful religious conversion in the country. Not wanting to be left behind, the Gujarat government is seeking the removal of a stay on a provision in its anti-conversion law that requires prior permission from the District Magistrate for any conversion done "directly or indirectly". The Gujarat High Court had correctly stayed Section 5 of the Gujarat Freedom of Religion Act, 2003 (amended in 2021 to include 'conversion by marriage'), while also staying the operation of other provisions that sought to cover inter-faith marriages as instances of illegal conversion. The High Court had noted that the prior permission requirement would force someone to disclose one's religious belief or any change of faith, contrary to Supreme Court rulings that say marriage and faith involve an individual's choice. In a strange claim, Gujarat argues that the stay on Section 5 is affecting even genuine inter-faith marriages that involve no fraud or coercion, as those who usually solemnise such marriages are unable to do so. This is based on a claim that the prior permission requirement obviates the need to question the genuine nature of the conversion, if any, consequent upon an inter-religious marriage.

No one would buy the claim that the provision enables voluntary conversion. Freedom of religion is protected only when no questions are raised and no suspicion entertained based on the mere fact that an inter-faith marriage has taken place. Common sense would suggest that forcing someone to disclose an intent to change one's faith violates freedom of conscience and the right to privacy. Also, when a separate appeal against the High Court's interim orders staying the provisions is pending before the Supreme Court, there was no need for the State government's petition seeking to revive the prior permission requirement as part of the ongoing hearing on the PIL against religious conversions. On the larger issue, the observations of a Supreme Court Bench headed by Justice M.R. Shah to the effect that religious conversion through "allurement" or charity work is a serious problem indicate an eagerness to goad the Government into coming up with anti-conversion measures on a national scale. It is questionable whether courts should entertain exaggerated allegations of rampant fraudulent conversions across the country, instead of leaving it to States to identify the extent of the problem, if any, and adopt steps to protect religious freedom and communal harmony.

दैनिक भास्कर

Date:06-12-22

आंकड़े सही न हों तो नीतियों पर असर होगा

संपादकीय

डिजिटल दौर में भी अगर आंकड़े सही न हों तो न तो नीतियां सही बन सकेंगी, न ही आर्थिक विकास को गति मिलेगी। सबसे ज्यादा जरूरत देश में कृषि क्षेत्र में सही स्थिति पता करने की है। चालू वर्ष की दूसरी तिमाही (जुलाई-सितम्बर) के ताजा आंकड़े इस कमी की ओर इंगित करते हैं। इसके अनुसार विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) की विकास दर पिछले वर्ष के इसी काल के मुकाबले 4.3% घटी है जबकि कृषि की 4.6% बढ़ी है। यहां प्रश्न है मेनेजर इंडेक्स के अनुसार पिछले 17 महीनों में कच्चे माल की खरीद में लगातार वृद्धि हुई है। ऐसे में विनिर्माण में वृद्धि कैसे कम हो सकती है? अब इसके उलट कृषि में विकास दर को लें। स्वयं कृषि मंत्रालय का पहला एडवांस एस्टीमेट आंकड़ा बताता है कि इस तिमाही में खरीफ, खासकर धान व तिलहन का उत्पादन पिछले साल के इसी काल के मुकाबले कम होगा। अन्य विश्वसनीय सर्वे भी यही कहते हैं कि इस साल बारिश एक समान और सही समय पर न होने से कम रकबे में फसलें बोई गईं। कृषि सेक्टर की दूसरी प्रमुख गैर-फसलीय गतिविधि है- पशुपालन व डेयरी । चारा, खली, दाने के दाम में भारी वृद्धि से दूध पर असर पड़ा, जिसकी वजह से अमूल - मदर डेयरी ने दाम बढ़ाए। फिर लम्पी वायरस के कारण यह सेक्टर आहत रहा। फिर कृषि क्षेत्र में विकास का आंकड़ा कैसे बढ़ सकता है? जरा सोचिए, डीएएचडी के अनुसार भारत में हर घर में औसत करीब दो लीटर दूध की रोजाना की उपलब्धता है। क्या कुपोषण और प्रोटीन की कमी वाले इस देश में हर घर इतने दूध की बात पर भरोसा किया जा सकता है? आज भी देश में खाद्य खपत के 11 साल पुराने आंकड़ों पर ही नीतियां बन रही हैं।

Date:06-12-22

स्पेस में निजी क्षेत्र और स्टार्ट-अप के बढ़ते दखल के मायने

साधना शंकर, (लेखिका भारतीय राजस्व सेवा अधिकारी)

पिछले महीने विक्रम-एस का सफलतापूर्वक प्रक्षेपण अंतरिक्ष-विज्ञान के क्षेत्र में भारत की एक बड़ी कामयाबी थी। छह मीटर लम्बा, नीले-सफेद रंग वाला यह रॉकेट पहला ऐसा अंतरिक्षयान है, जिसे पूरी तरह से निजी क्षेत्र के द्वारा डिजाइन किया और बनाया गया है। इसे श्रीहरिकोटा स्थित इसरो की साइट से लॉन्च किया गया था। विक्रम-एस का यह नामकरण विक्रम साराभाई के नाम पर किया गया है।

स्कायरूट नामक जिस स्टार्ट-अप ने विक्रम-एस को लॉन्च किया था, वह हैदराबाद स्थित है। उसने रॉकेट के थ्रस्टर्स बनाने के लिए थ्री-डी प्रिंटिंग तकनीक का उपयोग किया और उसकी मोटर-केसिंग बनाने के लिए कार्बन फाइबर प्रयुक्त किया। ये उपाय अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी की श्रेणी में आते हैं। रॉकेट में कलाम-80 इंजिन का दमखम था। लॉन्च के बाद चंद ही मिनटों में रॉकेट पृथ्वी से 89.5 किलोमीटर दूर चला गया था।

इसरो सार्वजनिक क्षेत्र की संस्था है। उसने हमारे देश को अंतरिक्षयात्रा करने वालों की कतार में ला खड़ा किया और स्पेस टेक्नोलॉजी में हमें आत्मनिर्भर बनाया। कम लागत में स्पेस रिसर्च कैसे की जाती है, इसकी एक मिसाल इसरो ने कायम की है। लेकिन स्पेस-इकोनॉमी से 10 अरब डॉलर का ही राजस्व मिल रहा था, जो कि दुनिया के 440 अरब डॉलर के राजस्व का महज दो प्रतिशत है। अभी तक स्पेस सेक्टर में निजी क्षेत्र की सहभागिता केवल इसरो के सप्लायर के रूप में ही थी। 2020 में भारत सरकार ने स्पेस सेक्टर को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया और प्रारम्भ मिशन के तहत निजी कम्पनियों को रॉकेट और सैटेलाइट्स बनाने की अनुमति दे दी गई। प्राइवेट कम्पनियां केवल रॉकेट और सैटेलाइट्स ही नहीं बना सकती थीं, बल्कि उन्हें लॉन्च भी कर सकती थीं। नई नीति के तहत इसरो भी अब निजी कम्पनियों को अपनी फेसिलिटीज के उपयोग की अनुमति देगा। निजी क्षेत्र के लॉन्च और अन्य स्पेस-गतिविधियों की निगरानी करने और उनसे समन्वय के लिए इंडियन नेशनल स्पेस प्रमोशन एंड अथॉराइजेशन सेंटर यानी इन-स्पेस की स्थापना की गई है।

विक्रम-एस के लॉन्च ने देश में स्पेस-गतिविधियों के एक नए दौर की शुरुआत कर दी है। इस क्षेत्र में प्रवेश के इच्छुकों की संख्या बढ़ रही है। 68 फर्में पे-लोड्स बनाना चाहती हैं, 30 रॉकेट और उनके घटक बनाना चाहती हैं, वहीं 57 या तो जमीनी स्टेशन बनाने को तैयार हैं या स्पेस से प्राप्त डाटा का उपयोग विभिन्न गतिविधियों में करना चाहती हैं। स्पेस के क्षेत्र में स्टार्ट-अप सेक्टर जोशो-खरोश से अपनी मौजूदगी दर्ज करा रहा है। 2020 के बाद से अब तक 101 स्टार्ट-अप रजिस्ट्रेशन करा चुके हैं। विदेशों से भी दिलचस्पी दिखाई जा रही है और दुनिया की कुछ बड़ी कम्पनियां सॉफ्टवेयर और डाटा एनालिसिस के क्षेत्र में भारत की महारत का लाभ उठाना चाहती हैं। इसमें उनका फायदा यह है कि भारतीय उद्यम की लागत कम है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए भारतीय उद्यमियों को अपनी लागत को कम रखना पड़ेगा और साथ ही रीयूजेबल रॉकेट बनाने पड़ेंगे। स्पेस के क्षेत्र में आज जो रोमांचक गतिविधियां हो रही हैं, वे हमारे देश के युवाओं के लिए नया अध्याय साबित हो सकती हैं।

विक्रम-एस के बाद से इसरो आठ और नैनो सैटेलाइट्स को लॉन्च कर चुका है और ये सभी भारत और दुनिया में निजी क्षेत्रों के द्वारा बनाए गए हैं। आंकड़ों के अनुसार आज पृथ्वी की कक्षा में 4550 मनुष्य-निर्मित सैटेलाइट्स हैं। आगामी दस वर्षों में कम से कम 50 हजार और सैटेलाइट्स लॉन्च किए जा सकते हैं। इसका यह मतलब है कि पृथ्वी की कक्षा

एक खचाखच भरा हाईवे साबित होने जा रहा है। स्ट्रैटोस्फीयर में अंतरिक्षयानों के कारण कार्बन फुटप्रिंट को लेकर भी चिंताएं जताई गई हैं। परम्परागत रूप से स्पेस सम्प्रभु राष्ट्रों का डोमेन रहा है, लेकिन स्पेस-एक्सप्लोरेशन और टूरिज्म में दूसरे प्लेयर्स की आमद के बाद नियमों पर पुनर्विचार की जरूरत हो सकती है। अभी तक स्पेस सेक्टर में निजी क्षेत्र की सहभागिता केवल इसरो के सप्लायर के रूप में ही थी। 2020 में भारत सरकार ने स्पेस सेक्टर को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया। यह युवाओं के लिए एक नया अवसर है।

जनसत्ता

Date:06-12-22

बेहतरी का संकल्प

संपादकीय

समूह बीस देशों के संगठन यानी जी-20 की अध्यक्षता मिलने के बाद भारत में इसकी पहली बैठक शुरू हो चुकी है। इसमें चालीस देशों के शेरपा हिस्सा ले रहे हैं। पूरे साल देश के पचपन स्थानों पर ऐसी कुल दो सौ बैठकें होनी तय हैं। पहली बैठक में साल भर होने वाली बैठकों और फिर शिखर सम्मेलन के मुद्दे स्पष्ट हो चुके हैं। सभी सदस्य देशों ने आजीविका के संकट से उबरने के लिए समावेशी व्यवस्था की ओर आगे बढ़ने का संकल्प लिया है। इन बैठकों में मुख्य रूप से वैश्विक विकास, महिला विकास, व्यापार, भ्रष्टाचार, आर्थिक-वित्तीय, रोजगार, संस्कृति, चिकित्सा, शिक्षा आदि विषयों को शामिल किया गया है। इन्हीं विषयों पर लिए गए निर्णयों के आधार पर शिखर सम्मेलन के दौरान सम्मिलित रूप से अंतिम फैसले पर पहुंचा जा सकेगा। पहली बैठक में स्वीकार किया गया कि कोरोना महामारी के बाद दुनिया गंभीर संकट के दौर से गुजर रही है। इस दौरान वैश्विक ऋण में वृद्धि हुई है, विकास दर कमजोर हुई, मुद्रास्फीति बढ़ी और रोजगार में कमी आई है। इन स्थितियों से पार पाने के लिए नए संकल्प के साथ आगे बढ़ने की जरूरत है। इस कठिन दौर में इस संकल्प से स्वाभाविक ही बेहतरी की उम्मीद जगी है।

जी-20 की सदारत भारत को मिलना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि आर्थिक विकास को लेकर तमाम देश इसकी तरफ नजरें उठाए देख रहे हैं। दुनिया के कई बड़े उभरते बाजार जी-20 संगठन में हैं और यह समूह दुनिया की दो तिहाई आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। दुनिया की पचासी फीसद जीडीपी, अठहत्तर फीसद वैश्विक व्यापार और नब्बे फीसद पेटेंट जी-20 देशों के पास है। निस्संदेह इतने क्षमतावान देश अगर मिल कर काम करें तो आर्थिक संकट से उबरना कठिन काम नहीं माना जा सकता। मगर रूस-यूक्रेन युद्ध और चीन की एकाधिकारवादी नीतियों के चलते व्यापार-वाणिज्य संबंधी प्रयासों में बाधा उत्पन्न हुई है। सबसे चिंता की बात है कि विश्व की आपूर्ति शृंखला बाधित हुई है। चूंकि रूस से भारत की गहरी मित्रता है और वह भारत की सलाह पर अमल भी करता रहा है, इसलिए तमाम देशों को उम्मीद है कि भारत अगर गंभीरता से प्रयास करे, तो यूक्रेन के साथ उसकी तनातनी पर विराम लगाना आसान होगा। भारत खुद भी ऐसा प्रयास करता रहा है। जी-20 की अध्यक्षता मिलने के बाद भारत की यह जिम्मेदारी और बढ़ गई है कि वह आर्थिक विकास की राह में आने वाली मुश्किलों को दूर करने का प्रयास करे।

पहली बैठक में भारत के शेरपा ने फिर से दोहराया कि आपदा को अवसर में बदलने की दिशा में सोचने से इस संकट से जल्दी उबरा जा सकता है। जी-20 देशों के साथ परस्पर व्यापार-वाणिज्य के रिश्ते मजबूत होंगे, तो स्वाभाविक ही भारत की आर्थिक विकास दर पर भी उसका सकारात्मक असर पड़ेगा। अभी भारत खुद भी महंगाई, बेरोजगारी, स्वास्थ्य सुविधाओं, शिक्षा, लोगों को गरीबी रेखा से बाहर निकालने जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। इस दिशा में बेहतर नतीजे तभी आ सकते हैं, जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और निर्यात को बढ़ावा मिले। जी-20 देशों के साथ तालमेल करके इस दिशा में बेहतर नतीजे हासिल करना बड़ी चुनौती नहीं कही जा सकती। जी-20 के सदस्य देशों में खपत और उत्पादन की सबसे अधिक क्षमता भारत के पास है, इसलिए इस जिम्मेदारी को वह सदस्य देशों के साथ मिल कर निस्संदेह एक बेहतर अवसर के रूप में बदल सकता है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:06-12-22

गन्ना किसानों की पीड़ा और नीति आयोग की अनुशंसाएं

के सी त्यागी, (पूर्व सांसद)

नीति आयोग द्वारा गन्ना एवं चीनी उद्योग पर गठित कार्यबल की अनुशंसाएं किसानों की मुसीबतें बढ़ा रही हैं। उत्तर प्रदेश समेत कई राज्य सरकारों द्वारा गन्ना मूल्य के लिए एसएपी (राज्य सरकार द्वारा घोषित मूल्य) की घोषणा न करना इसका ताजा उदाहरण है। साल 2022- 2.3 के लिए गन्ने के दाम में 15 रुपये प्रति क्विंटल की बढ़ोतरी की गई है। यह फैसला प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली आर्थिक मामलों की कैबिनेट कमेटी द्वारा किया जाता है। कमेटी ने स्वीकार किया है कि गन्ने की उत्पादन लागत 162 रुपये प्रति क्विंटल रही। दरअसल, कृषि लागत मूल्य के आधार पर ही बढ़ोतरी की सिफारिश की जाती है, लेकिन लखनऊ गन्ना रिसर्च इंस्टीट्यूट आकलन में एक क्विंटल गन्ने की लागत 280 रुपये आंकी गई है, जबकि शाहजहांपुर गन्ना शोध संस्थान के मुताबिक, यह लागत 301 रुपये है। फिर किस आधार पर चीनी मिल मालिक और नीति आयोग के अफसर गन्ना किसानों की समृद्धि की दास्तान तैयार कर रहे हैं ? गौर करने वाली बात यह भी है कि लागत मूल्य आयोग में अभी आधे पद रिक्त हैं और एक लंबे अंतराल के बाद अध्यक्ष की नियुक्ति हो पाई है।

"सुगर केन कंट्रोल ऑर्डर 1966 में संशोधन के बाद गन्ने का मूल्य तय करने का जिम्मा 'फेयर ऐंड रिमुनरेटिव प्राइस' यानी एफआरपी को सौंपा गया। पहले यह एमएसपी द्वारा तय किया जाता था। पुराने फॉर्मूले के तहत गन्ने की कीमत

तय करते समय छह बातों का ध्यान रखना पड़ता था । गन्ने उगाने का लागत मूल्य, गन्ने की जगह किसान दूसरी चीज बोता, तो उस पर कितना मूल्य आता, राशन की दुकान पर उपभोक्ता को किस कीमत पर चीनी मिल रही है, उपभोक्ता खुले बाजार में किस दाम पर चीनी खरीद रहे हैं, गन्ने से चीनी की रिकवरी कितनी है और गन्ने के सह-उत्पादों जैसे शीरा, खोई व मैली से होने वाली आय । तब पेट्रोल में मिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाले एथेनॉल प्रचलन में नहीं था। पिछले कई वर्षों से सरकारी प्रोत्साहन से पेट्रोल में एथेनॉल की • मात्रा लगभग 20 प्रतिशत होने का अनुमान है, इसीलिए वर्तमान चालू वित्त वर्ष में एथेनॉल की कीमत में भी बढ़ोतरी की गई है। इसे 63.45 रुपये प्रति लीटर से बढ़ाकर 65 रुपये प्रति लीटर किया गया है।

ताजा विवाद गठित कार्यबल की सिफारिशों को लेकर है, जिसके कारण उत्तर प्रदेश सरकार समेत अनेक राज्य सरकारों ने एसएपी देने से इनकार कर दिया है। नीति आयोग का मानना है कि चीनी उद्योग में आए ठहराव के लिए गन्ने की कीमतों में हो रही लगातार बढ़ोतरी बड़ी वजह है, जिससे यह संकट के दौर से गुजर रहा है। देश में चीनी खपत की अतिरिक्त मांग न होने के बावजूद किसान गन्ने की खेती का रकबा बढ़ाते जा रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय व घरेलू बाजार के हालात को देखते हुए गन्ने के दाम में बढ़ोतरी नहीं की जानी चाहिए। जो राज्य एसएपी बढ़ाकर अतिरिक्त दाम देने को तैयार हैं, उन्हें कार्यबल ने ऐसा न करने के सुझाव दिए हैं।

कृषि वैज्ञानिकों के अनुसंधानों और किसानों की दिन-रात की मेहनत का नतीजा है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा चीनी उत्पादक व उपभोक्ता है और दूसरे नंबर का निर्यातक है। भारत के करीब पांच करोड़ किसान और 50 लाख कुशल-अकुशल मजदूर इस उद्योग से अपनी जीविका चलाते हैं। यह उद्योग सालाना लगभग एक लाख करोड़ रुपये की कमाई करता है।

गन्ना पेराई के सीजन को शुरू हुए लगभग डेढ़ महीने से अधिक समय हो चुका है, लेकिन भुगतान को लेकर मिल मालिकों का रवैया यथावत है। कहने को तो गन्ने की फसल 'नगद फसल' कहलाती है, लेकिन वास्तविकता यह है कि किसानों को जितना समय एवं मेहनत फसल उपजाने पर खर्च करना पड़ता है, उतना ही वक्त उसे अपनी उपज का मूल्य पाने के लिए खर्च करना पड़ता है, हालांकि भार्गव फॉर्मूले के अनुसार, मिल में पहुंचाए जाने के 14 दिन के अंदर मिल मालिकों को किसानों को भुगतान करना जरूरी है, अन्यथा उसके बाद लंबित भुगतान पर 15 प्रतिशत सालाना की दर से ब्याज देने का प्रावधान है, लेकिन मिल मालिकों और अफसरों की मिली भगत से इस आदेश को कभी व्यवहार में उतारा नहीं जाता।